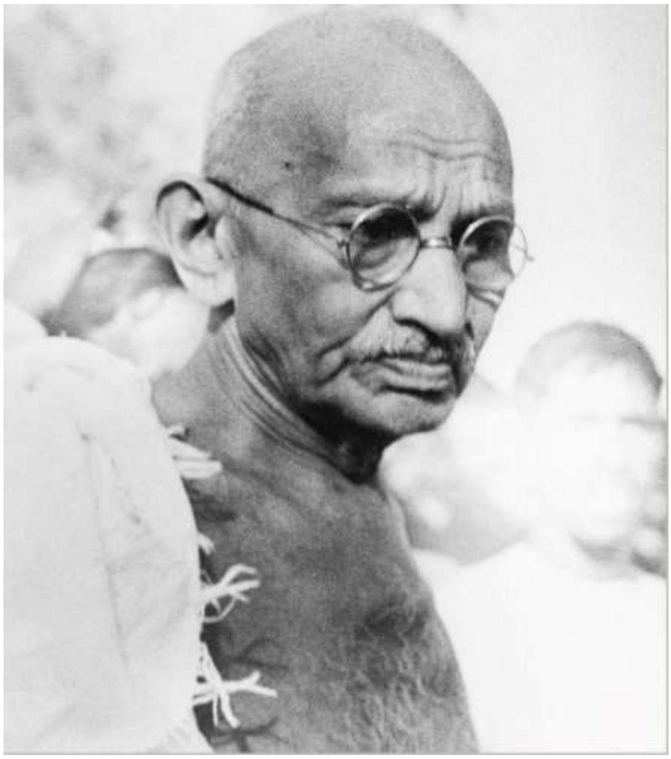
देश के प्रति गाँधी जी के अपराध



लेखक

विजय कुमार सिंघल

प्रकाशक

आस्थादीप प्रकाशन, आगरा

प्राक्कथन

जी हाँ, मैं उन्हीं मोहनदास कर्मचन्द गाँधी की बात कर रहा हूँ जिनको मूर्ख लोग 'महात्मा' और महामूर्ख लोग 'राष्ट्रपिता' कहते हैं। स्वतंत्रता के बाद गाँधी जी के चारों ओर हमारी सरकारों ने झूठ का जो महिमा मंडल बनाया है, उसके पीछे गाँधी जी के उन अपराधों को छिपा लिया गया है, जो उन्होंने देश के प्रति किये थे। बचपन में मैं भी गाँधी जी का भक्त था, लेकिन बड़े होने पर जैसे–जैसे मैं गाँधी जी के बारे में अधिक से अधिक जानता गया, वैसे–वैसे उनके चारों ओर बुना हुआ झूठ का पर्दा हटता गया और सामने आया उनका वह एक शर्मनाक चेहरा, जिसको देखना भी कोई देशभक्त पसन्द नहीं करेगा।

इस पुस्तिका में मैं गाँधी जी के केवल उन अपराधों की चर्चा करूँगा, जो उन्होंने देश के प्रति किये थे। उनके व्यक्तिगत चरित्र पर यहाँ मैं कोई टिप्पणी नहीं करूँगा। वे दूध न पीने का प्रण करके भी केवल बकरी का दूध पीते थे, अपनी पोती सरीखी लड़कियों के साथ नग्न सोकर अपने ब्रह्मचर्य की परीक्षा करते थे, गरीबी में रहने का दिखावा करते थे या किसी महिला के प्रति आकर्षित थे, इन सभी बातों से मेरा कोई लेना–देना नहीं है। मैं तो केवल अपने प्यारे देश के प्रति उनके उन कार्यों अर्थात् अपराधों की चर्चा करूँगा, जिनसे देश को इतनी अधिक हानि हुई कि उनकी भरपाई आजतक नहीं हो पायी है।

मैं गाँधी जी के इन कार्यों को अपराध इसलिए कह रहा हूँ कि ये जानबूझकर किये गये थे। यदि कोई अनजाने में कोई गलती कर देता है, तो हम उसे भूल मानकर क्षमा कर सकते हैं, लेकिन जानबूझकर की गयी गलतियों को अपराध माना जाता है। ये कार्य करते समय गाँधी जी को अच्छी तरह मालूम था कि वे जो कर रहे हैं वह देश के लिए हानिकारक है, परन्तु किन्हीं अज्ञात कारणों से वे ये अपराध करते गये और देश को भयंकर हानि पहुँचायी।

इस पुस्तिका की सामग्री को मैंने एक लेखमाला के रूप में फेसबुक पर लगाया था। इस लेखमाला पर बहुत प्रतिक्रियायें आयीं, उनमें से अधिकांश मुझसे सहमत थे। अनेक गाँधीभक्त उत्तेजित भी हुए। लेकिन मुझे उनकी चिन्ता नहीं है, क्योंकि किसी ने भी मेरे लेखों में कोई तथ्यात्मक भूल नहीं बतायी। उनका मुख्य तर्क यह था कि गाँधी जी महात्मा थे, राष्ट्रपिता थे, महामानव थे, उन पर उँगली उठाने का अधिकार हमें नहीं है। कहने की जरूरत नहीं कि ऐसे तर्क सरासर मूर्खतापूर्ण हैं और मुझे रत्तीभर भी स्वीकार नहीं हैं। अभी भी यदि कोई सज्जन कोई तथ्यात्मक भूल बतायेगा, तो उसे सुधारने को मैं हमेशा तैयार रहूँगा। मैं उनकी शंकाओं का भी समुचित उत्तर देने का प्रयास करूँगा। लेकिन अपशब्दों का प्रयोग करने वाले और निरर्थक प्रलाप करने वालों को मैं कोई उत्तर नहीं दूँगा, यह निश्चित है।

अस्तु।

ज्येष्ठ कृ 12, सं. 2075 वि. (12 मई, 2018) **—— विजय कुमार सिंघल**

खिलाफत आन्दोलन

खिलाफत आन्दोलन (1919–1922) भारत में मुख्यतः मुसलमानों द्वारा चलाया गया राजनैतिक–धार्मिक आन्दोलन था। वास्तव में तुर्की में सुन्नी मुसलमानों का एक खलीफा था, जिसको इस्लाम का मुखिया माना जाता था, ठीक वैसे ही जैसे पोप को दुनियाभर के कैथोलिक ईसाइयों का प्रमुख माना जाता है। उस खलीफा को वहाँ की जनता के समर्थन से एक क्रांतिकारी नेता मुस्तफा कमाल पाशा ने हटाने का निश्चय किया था और उसके सभी राजनैतिक अधिकार छीन लिये थे। भारत के मुसलमानों के आन्दोलन का उद्देश्य उस हटाये जाने वाले तुर्की के खलीफा के पद की पुनःस्थापना कराने के लिये अंग्रेजों पर दबाव बनाना था।

उस समय भारत में गाँधी जी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन चल रहा था, जिसके अन्तर्गत सरकारी कार्यालयों और विद्यालयों का बहिष्कार किया जा रहा था। इसी आन्दोलन के समय 13 अप्रैल, 1919 को वैशाखी के दिन अमृतसर के जलियांवाला बाग में हो रही आम सभा में अंग्रेजी सरकार द्वारा अमानुषिक गोली वर्षा किये जाने के कारण देश में सरकार के प्रति बहुत रोष फैल गया था। जगह–जगह सरकार के विरुद्ध प्रदर्शन आदि किये जा रहे थे।

उधर मुसलमानों का खिलाफत आन्दोलन अलग चल रहा था। गाँधी जी ने मूर्खता यह की कि उन्होंने इन दोनों आन्दोलनों को मिला दिया। उस समय तक कांग्रेस का पुराना नेतृत्व लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक तथा बिपिन चन्द्र पाल (लाल–बाल–पाल) लगभग समाप्त हो गया था। वे सभी गर्म दल के नेता थे, जबकि गाँधी जी उदारवादी थे। इसलिए तथाकथित हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए उन्होंने दोनों आन्दोलनों को एक कर दिया। उनको ऐसा करने से रोकने वाला भी उस समय कोई नहीं था, हालांकि वीर सावरकर और डॉ हेडगेवार सरीखे कुछ नेताओं ने इसके विरुद्ध चेतावनी दी थी।

पहली बात तो यह कि खलीफाई का मसला पूरी तरह तुर्की का मामला था। इससे भारत को या भारत की जनता को कुछ लेना–देना नहीं था। इसलिए कांग्रेस को इस आन्दोलन में झोंक देना केवल मूर्खता थी। दूसरी बात, जनता को मूर्ख बनाने के लिए गाँधी जी ने इस आन्दोलन के नाम में चालबाजी की। यह आन्दोलन खलीफाई के लिए था, जिसे अंग्रेजी में 'खलीफत' लिखा जाता है। परन्तु गाँधी जी और कांग्रेस ने चालाकी से इसे 'खिलाफत' लिखा, जिससे ऐसा भ्रम होता था कि यह अंग्रेजी सरकार के खिलाफ था।

हिन्दू और मुसलमान भारत के दो सबसे बड़े समुदाय हैं। देश के विकास के लिए उनमें परस्पर सद्भाव या एकता होना आवश्यक है। गाँधी जी ने हिन्दू और मुसलमानों की एकता का स्वप्न देखा था, तो यह अपने आप में गलत नहीं है। लेकिन वे यह भूल गए कि दो समुदायों की एकता तभी संभव होती है जब दोनों में समन्वय के तत्व मौजूद हों। एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता इसकी न्यूनतम आवश्यकता है। हिन्दू समाज में यह गुण प्रचुर मात्रा में है, जबकि मुस्लिम समाज में नाम मात्र

को भी नहीं है। इसलिए हिन्दू–मुस्लिम एकता कभी सम्भव ही नहीं है, कभी–कभी उसका भ्रम अवश्य पैदा किया जा सकता है।

यदि गाँधी जी ने मुसलमानों का 1400 वर्षों का इतिहास पढ़ा होता तो वे कभी हिन्दू–मुस्लिम एकता की बात नहीं करते। इनके पूरे इतिहास में एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिलता जब इन्होंने किसी अन्य समुदाय के प्रति जरा भी सहिष्णुता दिखाई हो। इसके विपरीत इनका पूरा इतिहास घोर असहिष्णुता, धर्मान्धता, रक्तपात और आतंकवाद से भरा हुआ है। इसलिए मुसलमानों के साथ किसी भी अन्य समुदाय की एकता होना असंभव है। गाँधी जी ने यह तो सही सोचा कि आजादी कि लड़ाई में मुसलमानों को भी साथ में आना चाहिए, लेकिन जो तरीका उन्होंने अपनाया वह बिल्कुल गलत ही नहीं, वरन् सरासर मूर्खतापूर्ण था।

कुछ समय बाद ही उस खिलाफत आन्दोलन को अंग्रेजों ने अपनी शक्ति के बल पर कुचल दिया और यह पूरी तरह असफल हो गया। जब यह आन्दोलन असफल हो गया, जो कि होना ही था, तो इस आन्दोलन ने साम्प्रदायिक हिंसा का रूप ले लिया। 1922 में केरल के मालाबार क्षेत्र में मोपला मुसलमानों ने अपनी खीझ उतारने के लिए वहाँ के अल्पसंख्यक हिन्दुओं पर अमानुषिक अत्याचार किये, हजारों माता–बहनों का शील भंग किया तथा मनमानी लूट–पाट और हत्याएं कीं। एक अनुमान के अनुसार इन दंगों में 20 हजार हिन्दुओं की हत्यायें की गयीं और लाखों का धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बनाया गया।

मूर्खता की हद तो यह है कि गाँधी जी ने इन दंगों की आलोचना भी नहीं की और मुसलमानों की गुंडागर्दी को यह कहकर उचित ठहराया कि वे तो अपने धर्म का पालन कर रहे थे। देखा आपने कि गाँधी जी को गुंडे–बदमाशों के धर्म की कितनी गहरी समझ थी! पर उनकी दृष्टि में उन हिन्दू माता–बहनों का कोई धर्म नहीं था, जिनको मुसलमान गुंडों ने भ्रष्ट किया। मुसलमानों के प्रति गाँधी जी के पक्षपात का यह अकेला उदाहरण नहीं है, बल्कि आगे भी वे मुसलमानों की हर गलत बात को सही बताते रहे और हिन्दुओं को ही अपने उपदेश देते रहे। इतने पर भी देश का दुर्भाग्य कि कमबख्त हिन्दू–मुस्लिम एकता न कभी होनी थी, न हुई।

हत्यारे के भाई गाँधी जी

यह बात सर्वविदित है कि मुसलमान हर संभव तरीके से अपनी संख्या बढ़ाना चाहते हैं, ताकि संख्या के बल पर वे सारे संसार पर इस्लामी हुकूमत कायम कर सकें। जब तक वे किसी देश में अल्पसंख्यक रहते हैं, तब तक वे वहाँ स्वयं को लोकतंत्र में विश्वास करने वाला बताते हैं और इसी आधार पर सारी सुविधायें लेते हुए अपनी संख्या बढ़ाते रहते हैं। इसके लिए वे चार–चार शादियाँ करना, दस–दस बच्चे पैदा करना, दूसरे धर्मों की लड़कियों को भगाना या जोर–जबरदस्ती या लालच से धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बनाना इन सब तरीकों को अपनाते हैं। फिर जैसे ही वे किसी देश में बहुसंख्यक हो जाते हैं, वैसे ही लोकतंत्र में उनका विश्वास हवा में उड़ जाता है और वे सबके ऊपर इस्लामी हुकूमत थोप देते हैं।

इसी मानसिकता के कारण वे हर उस आदमी को अपना दुश्मन मान लेते हैं, जो किसी भी तरह उनकी संख्या घटाने का प्रयास या काम करता है। जो व्यक्ति या संगठन उनके संख्या बढ़ाने के काम में बाधा बनता है उसे वे हर सम्भव तरीके से हटा देना चाहते हैं। ऐसा अपने देश के इतिहास में अनेक बार देखा गया है।

स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती भारत के शिक्षाविद, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी तथा आर्यसमाज के संन्यासी थे। उन्होंने शुद्धि आन्दोलन को बहुत लोकप्रिय तथा प्रबल बनाया था, अर्थात् वे परावर्तित मुसलमानों को वापस उनके पूर्वजों के हिन्दूधर्म में लाते थे। स्वामी श्रद्धानंद ने अपने शुद्धिकरण आन्दोलन द्वारा 50 हजार मुसलमानों को वापस हिन्दू धर्म में शामिल कराया था और वे आगे भी यह कार्य करते रहना चाहते थे। मुसलमानों की दृष्टि में यह घोर अपराध था, इसलिए एक धर्मांध मुसलमान अब्दुल रशीद 23 दिसम्बर, 1926 को उस समय बीमार स्वामी श्रद्धानंद के पास मिलने के बहाने पहुंचा और उसने तत्काल छुरा मारकर उनकी हत्या कर दी। हालाँकि वह पकड़ा गया और अदालत ने उसे सजा भी दी।

लेकिन गाँधी जी तो 'महात्मा' थे, इसलिए उन्होंने अब्दुल रशीद को अपना भाई कहा और उसके कृत्य की निंदा करने से भी इंकार कर दिया। जब इस बात पर बवाल हुआ, तो गाँधी जी ने कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में इसकी 'सफाई' देते हुए फिर उसे अपना भाई कहा। (जिनको इस बात पर कोई शक हो, वे डॉ पट्टाभि सीतारामैय्या द्वारा लिखित 'कांग्रेस का इतिहास' पढ़ें।) यह मुसलमानों के प्रति गाँधी जी के घोर पक्षपात का एक उदाहरण मात्र है। उनका पूरा जीवन ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है।

क्रांतिकारियों के शत्रु गाँधी जी

मो.क. गाँधी अहिंसा का बहुत जाप किया करते थे। इसी आधार पर वे भारत के स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों तथा क्रांतिकारियों का विरोध किया करते थे। वे आजादी अहिंसा के बल पर ही पाना चाहते थे। इसलिए वे अंग्रेजों का पूरा सहयोग करते थे और उनसे बातचीत की मेज पर ही कुछ मांगते थे। जब गाँधी जी गोलमेज सम्मलेन में भाग लेने के लिए लन्दन गए थे, उससे कुछ समय पहले ही अंग्रेजों की अदालत ने तीन भारतीय क्रांतिकारियों भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी की सजा सुनाई थी। उनको शीघ्र ही फांसी दी जाने वाली थी। कई कांग्रेसी नेताओं ने गाँधी से कहा था कि वे इस मामले को गोलमेज सम्मलेन में उठायें और क्रांतिकारियों को फाँसी से बचाने की कोशिश करें।

लेकिन गाँधी जी ने उस सम्मेलन में एक बार भी यह मुद्दा नहीं उठाया। यहाँ तक कि उन्होंने क्रांतिकारियों को रिहा करने की अपील करने से भी इंकार कर दिया। इसके विपरीत उन्होंने अंग्रेजों से कहा था कि यदि इन लड़कों को फाँसी देनी है, तो यह कार्य कांग्रेस का करांची अधिवेशन शुरू होने से पहले ही हो जाना चाहिए। बाद में अंग्रेज अधिकारियों ने कहा था कि 'यदि एक बार भी गाँधी जी ने भगतसिंह आदि को माफ करने की अपील की होती, तो हम निश्चय ही उनकी फाँसी

रद्द कर देते। पर ऐसा लगता है कि उनको फाँसी दिलवाने की हमसे भी अधिक जल्दी थी।'

लेकिन गाँधी जी का मानना था कि उन क्रांतिकारियों ने अंग्रेजों की हत्याएं की हैं, इसलिए उनको इसकी सजा भोगनी चाहिए। 'अहिंसा का पुजारी' हिंसा का समर्थन कैसे कर सकता था? लेकिन इन्हीं गाँधी जी को स्वामी श्रद्धानंद के हत्यारे अब्दुल रशीद को अपना भाई बताने और उसको माफ कर देने की अपील करने में कोई शर्म नहीं आई, सिर्फ इसलिए कि वह मुसलमान था।

इन क्रांतिकारियों को उनकी अपार लोकप्रियता के कारण 23 मार्च 1931 को चुपचाप फाँसी दे दी गयी थी और उनकी लाश को भी गुप्त रूप से जला दिया गया था। गाँधी जी ने तो इन क्रांतिकारियों की याद में स्मारक बनाने के प्रस्ताव का भी विरोध किया था।

नेताजी सुभाष का अनुचित विरोध और तानाशाही

'सादा जीवन उच्च विचार' का दम भरने वाले गाँधी जी वास्तव में स्वभाव से अधिनायकवादी थे। वे अपनी बात किसी भी प्रकार से सबसे मनवा लेते थे। इसके लिए वे प्रायः भावनात्मक भयादोहन (ब्लैकमेल) का सहारा लिया करते थे। गाँधी जी के इस तानाशाही स्वभाव को देखकर ही एक बार एक विदेशी विद्वान् पत्रकार ने कहा था कि यदि कभी इस आदमी के हाथ में सत्ता आई, तो यह इतिहास का सबसे क्रूर और निकृष्ट तानाशाह सिद्ध होगा। गाँधी जी की इस प्रवृति का स्वाद कांग्रेस के कार्यकर्ताओं और स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों को बार–बार चखना पड़ता था। हर आन्दोलन को वे चरम पर पहुँचने के बाद भी उसका उद्देश्य पूरा होने से पहले ही वापस ले लेते थे। इसी कारण कांग्रेस द्वारा चलाये गए सभी आन्दोलन बुरी तरह असफल रहे थे।

गाँधी जी में तानाशाहों जैसी प्रवृत्ति इतनी प्रबल थी कि वे अपने सामने किसी भी स्वतंत्र नेतृत्व को पनपने ही नहीं देते थे। वे केवल ऐसे कांग्रेस नेताओं को आगे बढ़ाते थे, जो उनकी हाँ में हाँ मिलाते थे और उनके हर उचित–अनुचित आदेश का पालन करते थे। गाँधी जी के इस रवैये के कारण भारत के स्वतंत्रता संग्राम को बहुत हानि पहुँची थी और नेताजी सुभाष चन्द्र बोस जैसे उत्तम कोटि के देशभक्त नेता को उनके द्वारा अपमानित होना पड़ा था।

कांग्रेस के 1938 के हरिपुरा (गुजरात) अधिवेशन में नेताजी सुभाष को निर्विरोध कांग्रेस अध्यक्ष चुना गया था। वे बहुत सक्रिय नेता थे और अंग्रेजी सरकार के साथ पूर्ण स्वतंत्रता से नीचे कोई भी समझौता करने को तैयार नहीं होते थे। वे चाहते थे कि कांग्रेस अंग्रेजों को 6 माह का समय स्वतंत्रता की घोषणा करने के लिए दे दे। परन्तु इस पर गाँधी जी सहमत नहीं हुए। नेताजी के विचारों के विपरीत गाँधी जी हमेशा अंग्रेजी सरकार के साथ सहयोग करके कुछ सुविधायें झटक लेने में विश्वास रखते थे। इस कारण नेताजी के साथ गाँधी जी के भारी वैचारिक मतभेद शुरू हो गये, हालांकि नेताजी गाँधी जी का व्यक्तिगत रूप से बहुत आदर करते थे।

अगले वर्ष अर्थात् 1939 में जब कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन जबलपुर के निकट त्रिपुरी में हुआ, तो नेताजी को पुनः अध्यक्ष बनने से रोकने के लिए गाँधी जी ने आंध्र प्रदेश के एक कांग्रेस नेता डॉ पट्टाभि सीतारामैया को अध्यक्ष पद के चुनाव में खड़ा कर दिया। उनका प्रचार करते हुए गाँधी जी ने स्पष्ट कहा कि डॉ सीतारामैया की जीत मेरी अपनी जीत होगी और उनकी हार मेरी अपनी हार होगी। इस तरह गाँधी जी ने कांग्रेस प्रतिनिधियों का भावनात्मक भयादोहन करने की पूरी कोशिश की। वे किसी भी तरह यह नहीं चाहते थे कि कोई अन्य नेता उनसे अधिक लोकप्रिय और शक्तिशाली हो जाये।

फिर भी कांग्रेस प्रतिनिधियों में नेताजी सुभाषचंद्र बोस की लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि वे गाँधी जी के खुले विरोध के बावजूद 29 जनवरी 1939 को कांग्रेस अध्यक्ष पद का चुनाव भारी बहुमत से जीत गए। उनको 1580 मत मिले, जबकि गाँधी जी के उम्मीदवार सीतारामैया केवल 1377 मत पा सके। गाँधी जी इस हार को नहीं पचा पाये। उन्होंने इसे व्यक्तिगत हार और अपमान माना। क्षुब्ध होकर उन्होंने कांग्रेस अध्यक्ष नेताजी के प्रति पूर्ण असहयोगात्मक रवैया अपना लिया। उनके पिछलग्गू कई नेताओं जैसे जवाहर लाल नेहरु, सरदार पटेल, अब्दुल कलाम आजाद आदि ने भी ऐसा ही किया और गाँधी जी के कहने से कांग्रेस कार्यसमिति से त्यागपत्र दे दिया।

नेताजी ने गाँधी जी सहित सभी कांग्रेस नेताओं को मनाने की बहुत कोशिश की, लेकिन वे न माने। इससे नेताजी के लिए काम करना असम्भव हो गया। अन्ततः उनके असहयोग से मजबूर होकर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने 29 अप्रेल को कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। फिर उन्होंने कांग्रेस को भी छोड़ दिया और 3 मई को 'फॉरवर्ड ब्लॉक' के नाम से अपना अलग राजनैतिक दल बना लिया। इस घटना से गाँधी जी की तानाशाही प्रवृत्ति सबके सामने नंगी हो गयी।

गाँधी जी की इस मूर्खता का देश के स्वतंत्रता आन्दोलन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। देश को नेताजी बोस जैसे श्रेष्ठ नेता से वंचित होना पड़ा। पहले अंग्रेजों ने उनको नजरबंद कर दिया। वहाँ से वे किसी तरह निकल भागे और विदेशों में भारत की स्वतंत्रता के लिए कोशिश करते रहे। उन्होंने जर्मनी और जापान के सहयोग से आजाद हिन्द फौज बनाकर सशस्त्र संघर्ष भी किया, परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध में इन देशों की पराजय के साथ ही उनकी योजनायें असफल हो गयीं। विदेश में ही नेताजी का देहान्त हुआ। ये सब घटनायें इतिहास का अंग हैं।

मूर्खता का दस्तावेज – 'भारत छोड़ो आन्दोलन'

1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन कांग्रेस द्वारा चलाया गया सबसे बड़ा आन्दोलन था। उस समय द्वितीय विश्व युद्ध चल रहा था और अंग्रेजों की सारी ताकत जर्मनी के नेतृत्व में लड़ रहे धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध लगी हुई थी। ऐसे समय में कांग्रेसी नेताओं का यह सोचना उचित ही था कि एक बड़ा आन्दोलन खड़ा करके अंग्रेजों को भारत से जाने के लिए बाध्य किया जा सकता है। वास्तव में नेताजी सुभाष चन्द्र

बोस भी यही सोच रहे थे, परन्तु, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, कांग्रेस नेताओं द्वारा अपेक्षित सहयोग न मिलने के कारण वे चोरी–छिपे भारत से बाहर निकल गये और जर्मनी तथा जापान की सहायता से देश को अंग्रेजी शासन से मुक्त कराने में लग गये।

भारत छोड़ो आन्दोलन का लक्ष्य भारत से ब्रितानी साम्राज्य को समाप्त करना था। यह आंदोलन गांधी जी द्वारा अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के मुम्बई अधिवेशन में शुरू किया गया था। 9 अगस्त 1942 को गांधी जी के आह्वान पर समूचे देश में एक साथ यह आंदोलन आरम्भ हुआ। यह भारत को तुरन्त आजाद करने के लिए अंग्रेजी शासन के विरुद्ध एक सविनय अवज्ञा आन्दोलन था।

लेकिन नेताजी की अनुपस्थिति में कांग्रेसी नेताओं ने यह अत्यन्त महत्वपूर्ण आन्दोलन बहुत ही मूर्खतापूर्ण ढंग से चलाया। उन्होंने अंग्रेजों से तो कहा– 'भारत छोड़ो' और देशवासियों से कहा– 'करो या मरो'। लेकिन देश को यह किसी ने नहीं बताया कि करना क्या है? दूसरे शब्दों में, गाँधी जी, नेहरू आदि कांग्रेसी नेताओं ने इस आन्दोलन को चलाने के लिए कभी कोई कार्यक्रम नहीं बनाया और न किसी का मार्गदर्शन किया। यह घोर आश्चर्य की बात है कि इससे पहले कई आन्दोलन चला चुकी कांग्रेस के नेताओं ने इस बारे में बिल्कुल ही नहीं सोचा।

इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक आन्दोलनकारी ने अपनी मर्जी से कार्यवाही की। सबने 'करो या मरो' नारे का अर्थ निकाला कि 'हिंसा करो और मरो।' अहिंसा का दम भरने वाले गाँधी जी और कांग्रेस के अन्य नेताओं ने हिंसा के लिए यह पृष्ठभूमि क्यों तैयार की, इसका उत्तर आजतक किसी ने नहीं दिया है। इस आन्दोलन में जमकर हिंसा हुई थी और इसी कारण अंग्रेजी सरकार ने बड़ी सरलता से इस आन्दोलन को कुचल दिया था। सरकारी आँकड़ों के अनुसार इस जनान्दोलन में 940 लोग मारे गये, 1630 लोग घायल हुए, 18 हजार लोग डी.आई.आर. (भारत सुरक्षा कानून) में नजरबन्द हुए तथा 60229 लोग गिरफ्तार हुए।

गाँधी जी और कांग्रेस ने इस आन्दोलन का कोई कार्यक्रम तो बनाया ही नहीं था, यह भी नहीं सोचा था कि यदि नेता गिरफ्तार हो गये, तो आन्दोलन कैसे चलेगा। अंग्रेजों ने चतुराई दिखाते हुए सभी प्रमुख नेताओं को आन्दोलन प्रारम्भ होने से एक दिन पहले ही रात में गिरफ्तार कर लिया था। 9 अगस्त को दिन निकलने से पहले ही काँग्रेस कार्यसमिति के सभी पदाधिकारी और सदस्य गिरफ्तार हो चुके थे और काँग्रेस को गैरकानूनी संस्था घोषित कर दिया गया था। इस कारण आन्दोलनकारी नेतृत्वविहीन हो गये और उनका मार्गदर्शन करने वाला कोई नहीं रहा। बिना कप्तान के जहाज का जो हाल होता है, वही हाल इस आन्दोलन का हुआ और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का यह सबसे महत्वपूर्ण आन्दोलन अपने चरम पर पहुँचने से पहले ही काल–कवलित हो गया।

अन्य आन्दोलनों को तो गाँधी जी चरम पर पहुँचने से पहले ही वापस ले लेते थे, लेकिन यह 'भारत छोड़ो' आन्दोलन अपनी मौत स्वयं मर गया और इसको वापस लेने की आवश्यकता गाँधी जी को कभी नहीं हुई। यदि 1942 का भारत छोड़ो

आन्दोलन गाँधी जी और कांग्रेस ने कोई सुदृढ़ योजना बनाकर चलाया होता, तो तभी अंग्रेजों को देश छोड़कर जाने के लिए बाध्य किया जा सकता था। लेकिन नेताओं की आपराधिक मूर्खता के कारण देश के हाथ से यह स्वर्णिम अवसर निकल गया। यह आन्दोलन गाँधी जी और अन्य कांग्रेसी नेताओं की मूर्खता का जीता–जागता दस्तावेज अवश्य बन गया।

इस आन्दोलन का एक घातक परिणाम यह भी हुआ कि जिस समय कांग्रेस के सभी बड़े नेता जेल में थे, उसी समय मुहम्मद अली जिन्ना तथा मुस्लिम लीग के उनके साथी अपना प्रभाव क्षेत्र फैलाने में लगे हुए थे। इन्हीं वर्षों में लीग को पंजाब और सिंध में अपनी पहचान बनाने का मौका मिला, जहाँ तब तक उसका कोई विशेष अस्तित्व नहीं था। जून 1944 में जब विश्व युद्ध समाप्ति की ओर था, तब गाँधी जी और अन्य नेताओं को रिहा किया गया। जेल से निकलने के बाद उन्होंने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच फासले को पाटने के लिए जिन्ना के साथ कई बार बात की थी। यहीं से देश के विभाजन की नींव पड़ी।

1942 के इस आन्दोलन के बाद कांग्रेस कभी कोई आन्दोलन नहीं चला सकी। देश को 1947 में आजादी भी कांग्रेस के किसी पराक्रम के कारण नहीं मिली थी, बल्कि द्वितीय विश्व युद्ध के कारण कमजोर हो गये अंग्रेजों ने अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से बाध्य होकर भारत छोड़ा था, जैसा कि हम आगे देखेंगे।

देश की हत्या

यह स्पष्ट हो जाने के बाद कि अंग्रेजों ने भारत को छोड़ने का फैसला कर लिया है और देश आजाद होने वाला है, प्रमुख राजनैतिक पार्टियों और नेताओं का दायित्व था कि वे देश की एकता को बचाने और सत्ता के शान्तिपूर्ण हस्तांतरण कराने की योजना तैयार करते। उस समय प्रमुख राजनैतिक पार्टियाँ थीं– कांग्रेस, मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा। मुस्लिम लीग घोषित रूप से मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था थी, लेकिन हिन्दू महासभा के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अधिकांश हिन्दू जनता कांग्रेस के साथ थी। इसलिए स्वाभाविक ही अंग्रेजों ने कांग्रेस और लीग इन दो पार्टियों को ही महत्व दिया। यह गाँधी की परीक्षा की घड़ी भी थी। वे पिछले 25–30 वर्षों से अपनी ओर से हिन्दू–मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयास करते रहे थे और इसके लिए मुसलमानों की अनेक अनुचित बातों को मानते या सहन करते रहे थे।

लेकिन जैसा कि मैं पहले भी लिख चुका हूँ, मुसलमानों को किसी भी तरह संतुष्ट करना और उनसे अपनी कोई बात मनवा लेना लगभग असम्भव है। इस सत्य का अनुभव आजादी के अवसर पर पूरी तरह हो गया। मुस्लिम लीग किसी भी कीमत पर पाकिस्तान बनाना चाहती थी। उनका तर्क यह था कि अंग्रेजों के आने से पहले मुसलमान ही इस देश पर राज्य करते थे, इसलिए अंग्रेजों के जाने के बाद राज्य उनको ही मिलना चाहिए, क्योंकि वे हिन्दू बहुमत वाले देश में अल्पसंख्यकों की तरह नहीं रहना चाहते और यदि ऐसा न हो, तो उन्हें अलग देश दे दिया जाये। डा.

अम्बेडकर ने मुस्लिम लीग के रवैये से तंग आकर एक बार कह डाला था कि ‘मुस्लिम लीग की माँगें हनुमान की पूँछ की तरह बढ़ती जा रही हैं।’

मुस्लिम लीग ने देश के विभाजन पर जोर डालने और हिन्दुओं को धमकाने के लिए ‘डायरेक्ट एक्शन’ अर्थात् खुलेआम गुंडागिर्दी तक की घोषणा कर डाली और वैसा किया भी। न्याय का तकाजा था कि तत्कालीन सरकार और कांग्रेस इस गुंडागिर्दी के खिलाफ जमकर लड़ते, लेकिन अहिंसा की आड़ लेकर कांग्रेस ने इसके सामने घुटने टेक दिये और देश का विभाजन करने को तैयार हो गये। हालांकि गाँधी जी किसी भी कीमत पर देश की अखण्डता को बनाये रखना चाहते थे। उन्होंने देश को वचन दिया था कि देश का विभाजन मेरी लाश पर होगा। वे तो देश की अखण्डता बचाये रखने के लिए एक बार यहाँ तक तैयार हो गये थे कि पूरा देश मुहम्मद अली जिन्ना को सौंप दिया जाये। लेकिन कांग्रेस के कुछ नेताओं के कड़े विरोध के कारण गाँधी जी की यह मूर्खतापूर्ण योजना पूरी नहीं हुई।

अन्ततः यह स्पष्ट हो गया कि देश का विभाजन होगा ही और देश के कई मुस्लिम बहुल क्षेत्र पाकिस्तान में चले जायेंगे। तब तक गाँधी जी न केवल मुस्लिम लीग से बल्कि कांग्रेस से भी निराश हो गये थे और उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया था कि अब कोई मेरी बात नहीं सुनता। ऐसी स्थिति में अपने वचन का पालन करने के लिए गाँधी जी को या तो आत्महत्या कर लेनी चाहिए थी या आमरण अनशन करना चाहिए था। परन्तु जो गाँधी जी जरा–जरा सी बात पर अनशन करने बैठ जाते थे, वे देश की हत्या होते देखते रहे और आत्महत्या करना तो दूर उन्होंने प्रतीकात्मक अनशन भी नहीं किया। क्यों? यदि उस समय गाँधी जी आत्महत्या कर लेते, तो नाथूराम गोडसे जैसे देशभक्त उनके खून से अपने हाथ रंगने के पाप से बच जाते और शायद देश का विभाजन भी रुक जाता।

अब प्रश्न उठता है कि कांग्रेस के तत्कालीन नेता देश का विभाजन करने को क्यों तैयार हो गये? इसके दो कारण मेरी समझ में आते हैं– एक, कांग्रेस के नेताओं ने हमेशा अहिंसा का जप किया था, इसलिए उनमें मुस्लिम लीग की गुंडागिर्दी का सामना करने की ताकत या हिम्मत बिल्कुल नहीं रह गयी थी। दो, कांग्रेस के नेता असफल आन्दोलनों के कारण हताश हो गये थे और सत्ता पाने के इस अवसर को किसी भी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहते थे। यही कारण है कि पहले सत्ता हस्तांतरण की तारीख जून 1948 तय हुई थी, परन्तु कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं ने अंग्रेजों पर जोर डालकर उन्हें 10 महीने पहले अगस्त 1947 में ही भारत छोड़ने के लिए तैयार कर लिया। यदि उन्होंने ऐसा दबाब न डाला होता, तो इस दस महीने के कीमती समय का उपयोग आबादी की शान्तिपूर्ण अदला–बदली और संसाधनों, प्रशासन तथा सेनाओं के विभाजन आदि के लिए किया जा सकता था। परन्तु लीगी और कांग्रेसी नेताओं की सत्ता की हवस ने इस अवसर को गवाँ दिया।

जब देश का विभाजन अपरिहार्य हो गया, तो कांग्रेसी नेताओं की जिम्मेदारी थी कि वे इस कार्य को योजनाबद्ध तरीके से सम्पन्न करते, परन्तु अपनी अयोग्यता और लापरवाही के कारण उन्होंने ऐसा करने का कोई प्रयास नहीं किया और देश

को उनकी नालायकी की भारी कीमत चुकानी पड़ी। जब मुसलमानों ने पाकिस्तान माँगा था और देश के 95 प्रतिशत मुसलमान इसके पक्ष में थे, तो न्याय का तकाजा था कि देश के सारे मुसलमान पाकिस्तान चले जाते और वहाँ से सभी गैर–मुसलमान भारत में आ जाते। मुहम्मद अली जिन्ना इसके लिए पूरी तरह तैयार थे, परन्तु 'सेकूलर' कहलाने के मोह में गाँधी जी और पंडित नेहरू ने कह दिया कि किसी भी मुसलमान को जबर्दस्ती पाकिस्तान नहीं भेजा जाएगा।

दूसरे शब्दों में, उन्होंने भारत में रह रहे मुसलमानों को इस बात की पूरी छूट दे दी कि वे चाहें तो पाकिस्तान चले जायें और न जाना चाहें तो न जायें। किसी ने भी उन मूर्ख नेताओं से यह नहीं पूछा कि जब आधे से अधिक मुसलमानों को भारत में ही रोककर रखना था, तो पाकिस्तान किसके लिए बनाया था, हुजूर? यह तो वही बात हुई कि कोई ट्यूमर निकालने के लिए आपरेशन किया जाये और आधे से अधिक ट्यूमर ही नहीं कैंची भी पेट में छोड़ दी जाये। इस मूर्खतापूर्ण नीति का परिणाम यह हुआ कि जो मुसलमान पढ़े–लिखे, खाते–पीते और सरकारी नौकरियों में थे, वे सब तो अधिकांशतः पाकिस्तान चले गये और जो अनपढ़, गरीब, धर्मांध मुसलमान थे और चाहते हुए भी पाकिस्तान न जा सके, वे भारत में ही रहकर सदा के लिए हमारा सिरदर्द बन गये।

इतना ही नहीं, लापरवाही की हद तो यह थी कि जो हिन्दू पाकिस्तान से भारत में आना चाहते थे, उनको सुरक्षित ढंग से यहाँ लाने की कोई व्यवस्था न तो पाकिस्तान की सरकार ने की और न भारत की सरकार ने पाकिस्तान से ऐसा कोई आग्रह किया। उनको पूरी तरह भगवान भरोसे छोड़ दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि अधिकांश हिन्दुओं को पाकिस्तान में ही अपनी जान, माल और इज्जत अर्थात् सर्वस्व गवाँ देना पड़ा। लाखों लोगों की हत्याएं हुई, हजारों माँ–बहनों की इज्जत लुटी और उनके लिए कांग्रेसी नेताओं और गाँधी जी के मुँह से 'उफ' तक न निकली। इस भारी हिंसा के बावजूद वे पूरी निर्लज्जता से यह दावा करते रहे कि देश को आजादी अहिंसा से मिली है। क्या इससे बड़ा झूठ कोई हो सकता है? यदि यही अहिंसा है, तो फिर हिंसा किसे कहेंगे?

आधे से अधिक मुसलमानों को भारत में ही रखने के पीछे नेहरू की धूर्तता भी थी। वे यह जानते थे कि स्वतंत्रता संग्राम और देश के विभाजन में कांग्रेस की जो भूमिका रही है, उसके कारण अधिकांश हिन्दू जनता कांग्रेस से घृणा करती है और वे कभी कांग्रेस को वोट नहीं देंगे। इसलिए नेहरू ने मुसलमानों के रूप में अपना सुरक्षित वोट बैंक बना लिया। यह वोट बैंक 1977 से पहले तक हमेशा कांग्रेस को वोट देता रहा और कांग्रेस लगातार सत्ता में आती रही।

जब आधे से अधिक मुसलमान विभाजन के बाद भी भारत में ही रह गये, तो उन्हें अन्य देशवासियों की तरह सामान्य नागरिक के रूप में रहना चाहिए था और देश के संविधान और कानून का पालन करना चाहिए था। परन्तु नेहरू की देशद्रोहिता की कोई सीमा नहीं थी। उन्होंने न केवल मुसलमानों को भारत में जानबूझकर रोका, बल्कि उनको अल्पसंख्यक के नाम पर ऐसे विशेषाधिकार भी दे दिये, जिनके वे पात्र

ही नहीं थे। भारत में जो समुदाय वास्तव में अल्पसंख्यक हैं, जैसे ईसाई, पारसी, यहूदी आदि, उन्होंने कभी अपने लिए विशेषाधिकार नहीं माँगे, परन्तु मुसलमानों ने, जो अच्छी खासी संख्या में हैं, अपने लिए 'मुस्लिम पर्सनल लॉ' के नाम से अलग नागरिक कानून बनवा लिया और तमाम सुविधायें भी प्राप्त कीं। वास्तव में नेहरू और कांग्रेस अपने वोट बैंक की सुरक्षा के लिए उनको हर प्रकार से संतुष्ट करने का प्रयास करते रहे और आज भी कर रहे हैं।

गाँधी जी का सबसे बड़ा अपराध – नेहरू को थोपना

गाँधी जी ने देश के प्रति जो अनगिनत अपराध किये थे, उनमें से कुछ की चर्चा मैं ऊपर कर चुका हूँ। मेरे विचार से देश के प्रति गाँधी जी का सबसे बड़ा अपराध यह था कि उन्होंने जवाहरलाल नेहरू जैसे अयोग्य, विलासी और पश्चिमी मानसिकता वाले व्यक्ति को प्रधानमंत्री के रूप में देश के ऊपर थोप दिया। ऐसा करके गाँधी जी ने अपनी तानाशाही प्रवृत्ति का एक बार फिर निर्लज्ज परिचय दिया।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले 1946 के चुनावों में कांग्रेस पार्टी को बहुमत मिल गया था और यह भी स्पष्ट हो गया था कि जो अंतरिम सरकार बनेगी, उसमें कांग्रेस का अध्यक्ष ही प्रधानमंत्री बनेगा। इसलिए कांग्रेस अध्यक्ष का पद बहुत महत्वपूर्ण हो गया था। उस समय मौलाना अबुल कलाम आजाद कांग्रेस के अध्यक्ष थे जो 1940 से अर्थात् पिछले 6 वर्षों से उस पद पर थे। वे आगे भी अध्यक्ष बने रहना चाहते थे, लेकिन गाँधी जी ने स्पष्ट शब्दों में उनसे मना कर दिया।

तब अध्यक्ष पद के लिए सभी प्रदेशों की कांग्रेस कमेटियों से नाम माँगे गये, जिसकी अंतिम तिथि 29 अप्रैल 1946 थी। लेकिन गाँधी जी ने 20 अप्रैल को ही यह स्पष्ट कर दिया था कि वे जवाहरलाल नेहरू को कांग्रेस अध्यक्ष पद पर देखना चाहते हैं। लेकिन आश्चर्य है कि प्रदेश कांग्रेस कमेटियों ने गाँधी जी की इस इच्छा की अवहेलना की और अपने मन से ही नामांकन भेजे। कुल 15 प्रदेश कांग्रेस कमेटियों में से किसी ने भी नेहरू के नाम का प्रस्ताव प्रधानमंत्री पद के लिए नहीं किया था। 12 प्रदेश कमेटियों ने सरदार पटेल के नाम का प्रस्ताव दिया था और शेष 3 प्रदेश कमेटियों ने कोई नाम नहीं भेजा।

सरदार पटेल इस पद के लिए सर्वाधिक योग्य थे और निर्विवाद रूप से प्रखर देशभक्त थे। जब नेहरू को पता लगा कि किसी ने भी उनके नाम का प्रस्ताव नहीं किया है और सरदार पटेल प्रधानमंत्री बन सकते हैं, तो वे गाँधी जी के सामने जाकर गिड़गिड़ाये और एक प्रकार से उनको धमकाया भी कि मैं कांग्रेस को तोड़ दूँगा। इससे गाँधी जी डर गये, यद्यपि नेहरू की गीदड़ भभकी में कोई दम नहीं था, क्योंकि यदि वे कांग्रेस को तोड़ने की कोशिश करते, तो स्वयं अलग–थलग पड़ जाते, क्योंकि कोई भी प्रदेश कांग्रेस कमेटी उनके साथ नहीं थी।

तब गाँधी जी ने आचार्य जे.बी. कृपलानी से कहा कि वे कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्यों से नेहरू का नाम प्रस्तावित करायें। यह भी गैर–कानूनी था, क्योंकि अध्यक्ष पद के लिए नाम प्रस्तावित करने का अधिकार केवल प्रदेश कांग्रेस कमेटियों को था।

फिर भी आचार्य कृपलानी ने गाँधी की इच्छा के अनुसार कांग्रेस कार्यसमिति के कुछ सदस्यों को नेहरू का नाम प्रस्तावित करने के लिए मना लिया।

अब गाँधी जी कांग्रेस में नेहरू का नाम स्वीकार कराने पर अड़ गये। उन्होंने सरदार वल्लभभाई पटेल से स्पष्ट शब्दों में अपना नाम वापस लेने और नेहरू के नाम का समर्थन करने को कहा। सरदार पटेल, डा. राजेन्द्र प्रसाद तथा अन्य नेता गाँधी जी का बहुत सम्मान करते थे, इसलिए उन्होंने गाँधी जी की यह घोर अनुचित बात मान ली और पीछे हट गये। इस प्रकार पार्टी की इच्छा के विपरीत जवाहरलाल नेहरू देश के प्रधानमंत्री बन गये और आगे भी अपनी मृत्यु तक बने रहे। गाँधी जी ने नेहरू को प्रधानमंत्री बनने का कारण यह बताया था कि यदि उनको प्रधानमंत्री न बनाया गया, तो वे रूठकर कांग्रेस से अलग हो सकते हैं और कांग्रेस और देश का नुकसान कर सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि वास्तव में नेहरू ने गाँधी जी और कांग्रेस को एक प्रकार से ब्लैकमेल किया था।

गाँधी जी को स्पष्ट रूप से इस बात का ज्ञान था कि नेहरू को बलपूर्वक प्रधानमंत्री के रूप में थोपकर वे घोर अनैतिक कार्य कर रहे हैं, लेकिन नेहरू के प्रति अपने नर्म रवैये के कारण उन्होंने यह कृत्य किया और सरदार पटेल और डॉ राजेन्द्र प्रसाद जैसे सर्वथा योग्य तथा लोकप्रिय नेताओं की भावनाओं का अनुचित शोषण किया, जो उन नेताओं के प्रति अन्याय और देश के प्रति अपराध ही कहा जाएगा। यहाँ सरदार पटेल और अन्य नेताओं पर भी प्रश्न उठाया जा सकता है कि उन्होंने जानबूझकर गाँधी जी की घोर अनुचित बात को क्यों स्वीकार कर लिया? यदि वे उस समय अपनी आवाज उठाते और नेहरू का स्पष्ट विरोध करते, तो शायद देश का इतिहास ही कुछ और होता।

अब देखा जाये कि देश की आजादी के आंदोलन में जवाहरलाल नेहरू का क्या योगदान था? कांग्रेस के आन्दोलनों का इतिहास बताता है कि हर आन्दोलन में नेहरू जी सबसे आगे रहकर सबसे पहले जेल में चले जाते थे। बस यही उनका योगदान था। वे सबसे पहले जेल जाकर हीरो बन जाते थे। जेल में वे ए क्लास की सुविधायें भोगते थे और पार्टी के बाकी लोग अंग्रेजों की लाठियाँ और अत्याचार सहन करते थे। नेहरू के लिए जेल यात्रा किसी पिकनिक से कम नहीं थी। उन्होंने आजादी के लिए कभी कोई कष्ट सहन नहीं किया, लेकिन सौदेबाजी करने और सत्ता की मलाई चाटने में वे सबसे आगे रहे। लेडी माउंटबेटन से उनका प्रेम प्रसंग था। उनके माध्यम से लार्ड माउंटबेटन पर उनका प्रभाव था, जिसका उन्होंने पूरा फायदा उठाया और सफल सौदेबाजी में सत्ता हथिया ली।

नेहरू ने प्रधानमंत्री बनने के बाद देश का जो बेड़ा गर्क किया, उसे सब जानते हैं। उनकी अयोग्यता का सबसे बड़ा सबूत कश्मीर आज भी हमारा सिरदर्द बना हुआ है। सरदार पटेल ने थोड़े ही समय में 542 रियासतों को एक कर डाला, लेकिन केवल एक मामला (कश्मीर का) नेहरू ने जबर्दस्ती अपने हाथ में रखा, और उनकी नालायकी देखिए कि वही लटक गया और आज तक लटका हुआ है। अगर कश्मीर का मामला भी सरदार पटेल के हाथ में होता, तो कब का हल हो गया होता। नेहरू

ने अपनी मूर्खतापूर्ण नीतियों से देश का जो अपमान कराया और विकास के नाम पर विनाश का जो बीज बोया, उसकी चर्चा आगे कभी की जाएगी।

गाँधी जी ने जवाहरलाल नेहरू जैसे अयोग्य व्यक्ति को बलपूर्वक प्रधानमंत्री बनाकर देश की जो कुसेवा की, उसका फल हम आज भी भोग रहे हैं और न जाने कब तक भोगते रहेंगे।

अहिंसा का अतिरेक अर्थात् मूर्खता

अहिंसा एक अच्छा गुण है और धर्म का एक आवश्यक अंग है– 'परम धरम श्रुति विदित अहिंसा', 'अहिंसा परमो धर्मः' आदि। लेकिन यह बात व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर ही सत्य है। यह किसी शासन का मूल सिद्धांत नहीं बन सकता। उदाहरण के लिए, सरकार और अदालत द्वारा अपराधियों को दंड देना ही पड़ता है और कई बार मृत्यु दंड भी दिया जाता है। प्रत्येक देश को अपनी सीमाओं की रक्षा के लिए सेना बनानी पड़ती है और दुश्मन देशों से युद्ध भी करना पड़ता है, जिसमें भारी हिंसा होती है। गाँधी जी ने अहिंसा पर जोर दिया, यह तो ठीक था, लेकिन उसी को अपना और पूरे देश का मूल सिद्धान्त बना लेना गलत था। गाँधी जी का विचार था कि अहिंसा से विदेशी शक्ति देश को छोड़कर चली जाएगी। स्पष्ट रूप से ऐसी सोच गलत ही नहीं, बल्कि सरासर मूर्खतापूर्ण है।

हमारे देश में गाँधी जी से पहले महात्मा बुद्ध ने अहिंसा पर जोर दिया था। वह एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी, क्योंकि उस समय वैदिक धर्म का पालन करने वालों में बहुत विकृतियाँ आ गयी थीं। वे पशुबलि और मानवबलि तक देने लगे थे। बुद्ध ने इसका विरोध किया और अहिंसा पर जोर दिया। इससे ये बुराइयाँ समाप्त हो गयीं। यहाँ तक तो ठीक था, लेकिन आगे चलकर बुद्ध ने हर प्रकार की हिंसा का विरोध करना शुरू कर दिया। किसी सद्गुण का अतिरेक भी अवगुण बन जाता है। ऐसा ही यहाँ हुआ। बुद्ध से प्रभावित होकर सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म अपना लिया और अपनी सेनाओं को कम कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारा देश जो हमेशा शक्तिशाली रहा था, धीरे–धीरे कमजोर होता गया। आगे चलकर विदेशी आतताइयों ने हमारे देश पर एक के बाद एक कई आक्रमण किये और अन्ततः देश गुलाम हो गया। मेरे विचार से ऐसा बुद्ध की अहिंसा के कारण ही हुआ।

इसका प्रत्यक्ष प्रभाव हम आज तिब्बत में देख सकते हैं। अहिंसा की अपनी मूर्खतापूर्ण नीति के कारण तिब्बत की बौद्ध सरकार ने अपनी कोई सेना नहीं बनायी। इससे चीनी भेड़ियों ने उसे सरलता से निगल लिया और हमारे तत्कालीन प्रधानमंत्री पोंगा पंडित नेहरू पंचशील का जप करते रह गये। आगे चलकर इसका कुपरिणाम भारत को भी भुगतना पड़ा और 1962 में चीन के हाथों अपमानित होना पड़ा।

गाँधी जी की अहिंसा न केवल मूर्खतापूर्ण थी, बल्कि एक तरफा भी थी। वे यह तो चाहते थे कि सभी आन्दोलनकारी और हिन्दू समाज अहिंसक बना रहे, लेकिन सरकारों तथा दूसरे समुदायों से ऐसा कभी नहीं कहते थे कि आप भी अहिंसा अपनाइए। इसके विपरीत उन्होंने मोपला दंगों में मुसलमानों की हिंसा को यह कहकर

उचित ठहराया था कि वे तो अपने धर्म का पालन कर रहे थे। क्या यह बात हास्यास्पद नहीं है? एक अन्य अवसर पर उन्होंने स्पष्ट कहा था कि आम हिन्दू कायर और आम मुसलमान गुंडा होता है। इसका मतलब यह है कि गाँधी जी को दोनों समाजों का अन्तर मालूम था, परन्तु अपने को 'महात्मा' कहलाने के मोह के कारण वे कभी मुसलमानों की हिंसा की निन्दा नहीं कर सके। वे केवल हिन्दुओं से यह चाहते थे कि वे हिंसा को सहन करें और अहिंसक बने रहें।

जब भी देश में साम्प्रदायिक दंगे होते थे, गाँधी जी हमेशा हिन्दू–बहुल स्थानों जैसे नोआखाली में जाकर हिन्दुओं को हिंसा करने से रोकते थे। परन्तु वे कभी मुस्लिम–बहुल स्थानों में नहीं गये। अगर वे वहाँ जाते, तो उन्हें अपनी अहिंसा की शक्ति का पता तुरन्त चल जाता। वहाँ तो वे दूसरे लोगों को भेजते थे। उदाहरण के लिए, कानपुर के दंगों में मुसलमानों को समझाने के लिए उन्होंने गणेश शंकर विद्यार्थी को भेज दिया। वे दो दिन में ही मुसलमानों के हाथों मारे गये। मुसलमान गुंडों ने चमनगंज की गलियों में खींचकर उनकी हत्या कर दी थी। उनकी लाश भी नहीं मिली। उनकी मौत की पुष्टि उनके एक कटे हुए हाथ पर लिखे हुए उनके नाम से हुई थी। इस अमानुषिक हत्या पर गाँधी जी की मूर्खतापूर्ण टिप्पणी देखिये– 'विद्यार्थी जी बहुत भाग्यशाली रहे, जो दंगे रोकने में शहीद हो गये।' यह देश का दुर्भाग्य है कि ऐसे अनेक उदाहरणों के बावजूद गाँधी जी के प्रति देशवासियों का मोह कम नहीं हुआ और आगे चलकर इसकी भारी कीमत देश को चुकानी पड़ी।

गाँधी जी की मूर्खतापूर्ण अहिंसा के कारण देश में कितनी हिंसा हुई, इसे सब जानते हैं। देश विभाजन के पहले वे न तो मुस्लिम लीग की गुंडागिर्दी रोकने के लिए कुछ कर सके और न विभाजन के समय पाकिस्तान से हिन्दुओं को सुरक्षित भारत में लाने की कोई व्यवस्था करा पाये। उन्होंने हिन्दुओं को पाकिस्तानी भेड़ियों के सामने पूरी तरह उनकी दया पर छोड़ दिया था। इसका परिणाम कितना भयंकर हुआ यह आपको पाकिस्तान से जान बचाकर आया हुआ कोई भी पंजाबी या सिन्धी परिवार बता सकता है। लेकिन गाँधी जी के मुँह से उनके प्रति सहानुभूति का एक शब्द तक कभी नहीं निकला।

गाँधी जी की पाकिस्तान परस्ती : 55 करोड़ रुपयों का मामला

मैं गाँधी जी की मुस्लिमपरस्ती के बारे में पहले लिख चुका हूँ। मुसलमानों के लिए अलग देश बन जाने के बाद उनकी यह प्रवृत्ति पाकिस्तानपरस्ती के रूप में सामने आयी। देश बँटवारे के बाद भी वे पाकिस्तान को धन देने के लिए आमरण अनशन पर बैठ गये थे। उनकी जिद्द की वजह से ही भारत को 55 करोड़ रुपयों का भुगतान पाकिस्तान को करना पड़ा था। कहा जाता है कि ये रुपए उसने टेंट खरीदने के लिए मांगे थे, पर उसने इस धन का उपयोग भारत के खिलाफ किया और इससे हथियार खरीदे। सरदार पटेल ने इसकी आशंका जाहिर करते हुए यह राशि पाकिस्तान को देने से मना किया, तो महात्मा गांधी ने आमरण अनशन की धमकी दे दी।

पाकिस्तान के नापाक इरादे इसके जन्म से पहले ही इसके संस्थापकों के मन में हिलोरें मार रहे थे। जिस समय भारत का बंटवारा हुआ उस समय भारत के खजाने में 155 करोड़ रुपए थे। भारत ने पाकिस्तान को 20 करोड़ रुपए पहले ही दे दिए थे। इसी बीच पाकिस्तान की सेना ने कबाइलियों के भेष में कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। सरदार पटेल ने कडा रुख अपनाते हुए तत्कालीन सेना अध्यक्षों को आदेश देकर कश्मीर में भारतीय फौज भिजवाई। भारतीय फौज ने कश्मीर पहुंचकर पाकिस्तान की सेना को खदेड़ दिया।

इसके बाद तत्कालीन गृहमंत्री सरदार पटेल और प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने तय किया कि जब तक पाकिस्तान महत्वपूर्ण समझौतों को नहीं मानता, तब तक शेष 55 करोड रुपए उसे नहीं दिए जाएंगे। सरदार पटेल ने यह भी कहा कि अगर पाकिस्तान को यह रुपया दिया गया, तो वह इसका उपयोग भारत के खिलाफ करेगा। जब इस बात का पता माउंटबेटन को चला, तो उसने गांधी जी को किसी तरह पटा लिया। गांधी जी ने नेहरू और पटेल से बात की। जब दोनों ने मना कर दिया, तो उन्होंने आमरण अनशन की धमकी दे दी। इसके बाद भी सरदार पटेल तो अड़े रहे, लेकिन नेहरू गांधी जी के आगे झुक गए और पाकिस्तान को 55 करोड रुपए देने के लिए राजी हो गए। उन्होंने यह पैसा जनवरी 1948 के पहले सप्ताह में पाकिस्तान को दिलवा दिया।

गांधीजी के कहने पर जब 55 करोड रुपए पाकिस्तान के पास पहुंच गए, तो उसके कुछ घंटे बाद ही पाकिस्तान ने कश्मीर पर फिर से हमला कर दिया। इस हमले से निपटने के लिए भारत रणनीति बना ही रहा था कि गांधी जी ने अचानक पाकिस्तान जाने का निर्णय ले लिया। भारत सरकार के ऊपर दबाव बनाने के लिए गांधीजी ने सात फरवरी 1948 को लाहौर में अनशन पर बैठने की बात कही थी। उस समय पाकिस्तान की राजधानी लाहौर ही थी, इस्लामाबाद को पाकिस्तान की राजधानी बाद में बनाया गया।

इस घटनाक्रम से स्पष्ट है कि समय बीतने के साथ–साथ गाँधी जी की मुस्लिमपरस्ती और पाकिस्तानपरस्ती लगातार बढ़ती जा रही थी और वे देश के लिए हानिकारक और दुर्भाग्यशाली सिद्ध हो रहे थे। नाथूराम गोडसे ने गांधी जी के इस काम को उनकी हत्या करने के अनेक कारणों में से एक प्रमुख कारण बताया था। उन्होंने सोचा था कि यदि गाँधी जी और अधिक जीवित रहे, तो वे इसी तरह देश को ब्लैकमेल करके हानि पहुँचाते रहेंगे। इसीलिए उन्होंने गाँधी जी को इस धरती से ही उठा देने का निर्णय किया था।

गाँधी वध और उसके बाद

अंग्रेजों द्वारा भारत छोड़ने और सत्ता के हस्तांतरण के साथ ही यह स्पष्ट हो गया था कि देश के विभाजन और लाखों हिन्दुओं के कत्ल और माता–बहिनों के अपमान के लिए कांग्रेस और उसके सत्तालोलुप नेता, विशेष तौर पर गाँधी जी जिम्मेदार थे। इससे सभी देशभक्त भारतीयों का हृदय क्रोध से उबल रहा था। हद

तो तब हो गयी, जब पाकिस्तान ने कबाइलियों के नाम पर कश्मीर में हमला कर दिया और गाँधी जी उसी समय उसे 55 करोड़ रुपये भुगतान कराने के लिए अड़ गये। जो गाँधी जी देश की हत्या और हिंसा रोकने के लिए प्रतीकात्मक अनशन भी न कर सके, वे पाकिस्तान को 55 करोड़ दिलवाने के लिए आमरण अनशन पर बैठ गये। यह देशद्रोहिता जैसी हरकत नहीं तो क्या थी?

सभी देशभक्त भारतीय अनुभव कर रहे थे कि गाँधी जी अब देश के ऊपर बोझ बन चुके हैं। लेकिन लोग समझ नहीं पा रहे थे कि उनके द्वारा भयादोहन करने से कैसे बचा जाये। ऐसे में एक प्रखर देशभक्त नाथूराम गोडसे ने इस व्यक्ति को संसार से उठा देने का निश्चय कर लिया। नाथूराम गोडसे कोई सामान्य अपराधी नहीं थे, बल्कि सुशिक्षित, विद्वान्, पत्रकार और एक समाचार पत्र के सम्पादक थे। वे यह जानते थे कि गाँधी वध एक कठिन कार्य है और इसको करने वाले को कठोर दण्ड तो भुगतना ही होगा, साथ में चारों ओर से भर्त्सना का भी सामना करना पड़ेगा। फिर भी उन्होंने यह कार्य करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। वे चाहते तो पेशेवर हत्यारों द्वारा यह कार्य करा सकते थे, परन्तु उन्होंने स्वयं यह कार्य करना तय किया, क्योंकि वे किसी और को बलि का बकरा नहीं बनाना चाहते थे। इतना ही नहीं, गाँधी वध के बाद वे वहाँ से भागे नहीं और न किसी और को कोई हानि पहुँचायी, हालांकि उनके पास भागने का पूरा अवसर था। इससे उनके चरित्र की महानता का पता चलता है।

30 जनवरी 1948 को हुए गाँधी वध के बाद नेहरू तथा कांग्रेस के नेताओं को हिन्दू राष्ट्रवादियों से अपनी दुश्मनी निकालने का पूरा मौका मिल गया। हालांकि नाथूराम गोडसे का उस समय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से कोई सम्बंध नहीं था और गाँधी वध की योजना उन्होंने हिन्दू महासभा के कुछ समर्थकों के साथ मिलकर बनायी थी। लेकिन नेहरू के लिए इतना ही पर्याप्त था कि बचपन में नाथूराम कभी संघ की शाखा में जाया करते थे। इसी बहाने से उन्होंने संघ को न केवल बदनाम किया और उस पर प्रतिबंध लगा दिया, बल्कि संघ के तत्कालीन सरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर (गुरुजी) को भी जेल में डाल दिया।

इतना ही नहीं, दिन–रात अहिंसा का जप करने वाले गाँधीवादी कांग्रेसियों ने गाँधी वध के बाद हिंसा का नंगा नाच किया और विशेष तौर पर संघ से सम्बंध रखने वाले मराठी ब्राह्मणों को निशाना बनाकर हत्यायें तथा उपद्रव किये। लेकिन कभी किसी गाँधीवादी ने इस हिंसा की निन्दा नहीं की। इसके विपरीत संघ कार्यकर्ताओं की महानता देखिये कि उन्होंने बदले में कांग्रेसियों पर हाथ नहीं उठाया, बल्कि केवल अपनी रक्षा की। रिहा होने के बाद गुरुजी ने कहा था कि यदि कभी हमारी जीभ दाँतों के बीच में आ जाती है, तो हम अपने दाँत नहीं तोड़ देते।

इस कांड की जाँच प्रारम्भ होने पर शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि गाँधी वध में संघ का कोई हाथ नहीं था और यह हिन्दू महासभा के मुट्ठीभर कार्यकर्ताओं का काम था। लेकिन जवाहरलाल नेहरू की क्षुद्रता देखिये कि उन्होंने संघ पर से प्रतिबंध तब भी नहीं हटाया और न श्री गुरुजी को रिहा किया। इस कारण संघ के कार्यकर्ताओं

को सत्याग्रह करना पड़ा। इस सत्याग्रह में इतने स्वयंसेवकों ने अपनी गिरफ्तारी दी, जितने किसी भी आन्दोलन में कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने भी नहीं दी थी। इतना ही नहीं पूरे देश में सत्याग्रह के समय नाममात्र की भी हिंसा नहीं हुई। तब नेहरू ने बहाना बनाया कि संघ का कोई संविधान नहीं है, इसलिए संघ गैरकानूनी है। इस हिसाब से तो नेहरू की सरकार भी गैरकानूनी थी, क्योंकि तब तक भारत का भी कोई संविधान नहीं था। फिर भी सरकार की संतुष्टि के लिए संघ के कुछ कार्यकर्ताओं ने संघ का संविधान तैयार किया और तब श्री गुरुजी की रिहाई हुई तथा संघ से प्रतिबंध हटा।

नाथूराम गोडसे पर गाँधी वध का जो केस चला, उसमें एक बार भी संघ का नाम नहीं आया। फिर भी पूरी निर्लज्जता से कांग्रेसी और उनके चमचे कम्यूनिस्ट आज भी संघ को 'गाँधी का हत्यारा' बताते रहते हैं। अपने बयान में नाथूराम गोडसे ने अपने कार्य के समर्थन में जो कुछ कहा था, उसे सुनकर अदालत में मौजूद सभी लोगों की आँखें गीली हो गयी थीं। न्यायाधीश महोदय को लिखना पड़ा था कि यदि उस समय अदालत में उपस्थित लोगों को जूरी बना दिया जाता और उनसे फैसला देने को कहा जाता, तो अवश्य ही वे प्रचण्ड बहुमत से नाथूराम के निर्दोष होने का फैसला देते। फिर भी न्यायाधीश ने कानून का सम्मान करते हुए नाथूराम को फाँसी की सजा सुनायी और नाथूराम गोडसे ने उसे स्वीकार किया।

गाँधी जी तो चले गये, लेकिन हमारे देश की जनता में सदा के लिए हीरो बन गये। यह इस हत्याकांड का उल्टा परिणाम हुआ। नाथूराम गोडसे यदि उस समय उनका वध न करते, तो एक–दो साल में गाँधी जी स्वयं घुट–घुटकर मर जाते। लेकिन एक बात और है कि नाथूराम ने गाँधी के वध का पाप अपने सिर लेकर एक अन्य तरह से भी देश का उपकार किया। कल्पना कीजिए कि यदि गाँधी जी किसी धर्मान्ध मुसलमान के हाथों से मारे जाते, जिसकी पूरी संभावना थी, तो देश में कितनी भयंकर हिंसा होती? मरने के बाद भी गाँधी जी देश के लिए अभिशाप बने रहे और आज तक बने हुए हैं।

गाँधी जी के बाद उनके नाम का अभिशाप

जीवित रहते हुए गाँधी जी ने देश की जो कुसेवा की और हानि पहुँचायी, उससे कई गुना अधिक हानि उन्होंने मरने के बाद अपने नाम के दुरुपयोग से पहुँचायी। मेरा संकेत उनके द्वारा फिरोज खान को अपना 'गाँधी' कुलनाम देने की ओर है, जिसने नेहरू की बेटी इन्दिरा से विवाह किया और उसकी सन्तानों ने नेहरू और गाँधी दोनों नामों का जमकर फायदा उठाया और देश को जी भरकर लूटा। इसे समझने के लिए कुछ विस्तार में जाने की आवश्यकता है।

जवाहर लाल नेहरू का विवाह 1916 में कमला कौल नाम की युवती से हुआ था, जो एक सुसंस्कृत कश्मीरी हिन्दू ब्राह्मण परिवार की पुत्री थी। इसके विपरीत नेहरू पश्चिमी सभ्यता में ढले हुए थे और उनका खान–पान और आचार–विचार सब कुछ कमला जी के विपरीत थे। विवाह के तुरन्त बाद 1917 में उनके एक पुत्री पैदा

हुई, जिसका नाम इन्दिरा रखा गया था। कुछ समय बाद एक पुत्र भी पैदा हुआ, जो केवल 2 दिन बाद मर गया। इसके बाद ही कमला नेहरू अवसाद में चली गयीं। इसका एक कारण यह भी था कि नेहरू का ध्यान राजनैतिक आन्दोलनों और अन्य सुन्दर महिलाओं में लगा रहता था। इसलिए वे अपनी पत्नी और पुत्री पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे सके। इसके परिणामस्वरूप कमला जी क्षयरोग से ग्रस्त हो गयीं। पहले भुवाली में उनका इलाज चला, फिर यूरोप भेजी गयीं। वहीं उनका देहान्त 1936 में हो गया। उस समय इन्दिरा 19 वर्ष की युवती थीं।

बीमार माँ और राजनीति में व्यस्त बाप की पुत्री इन्दिरा का भटकना स्वाभाविक था। इलाहाबाद में एक मुस्लिम परिवार उनके निवास आनन्द भवन में शराब की आपूर्ति किया करता था। उनका एक लड़का फिरोज खान प्रायः माल देने आता था, वहीं इन्दिरा से उसका परिचय हो गया। यह फिरोज एक मुस्लिम बाप और पारसी माँ की सन्तान था, परन्तु अपना धर्म पारसी बताता था। इन्दिरा की पढ़ायी भी अच्छी तरह नहीं चली। किसी तरह उसने हाईस्कूल पास किया। फिर इंटर की पढ़ाई के लिए उसे शान्तिनिकेतन भेजा गया। वहाँ उसका मन पढ़ाई में कम लगता था और अनुशासन अधिक तोड़ा करती थी।

एक दिन एक जर्मन प्रोफेसर के साथ कामक्रीड़ा करते हुए उसे रंगेहाथ पकड़ लिया गया, इसलिए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने उसे शान्तिनिकेतन से निकाल दिया। अपने पिता नेहरू का प्रधानमंत्री पद भी उसे नहीं बचा सका। तब उसने लंदन के ऑक्सफोर्ड विद्यालय में प्रवेश के लिए परीक्षा दी, परन्तु फेल हो गयी। उन्हीं दिनों फिरोज खान भी वहाँ लंदन स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स में पढ़ते थे। दोनों की मुलाकात दोबारा लन्दन में हुई, तो उनके बीच प्रेम हो गया और कहा जाता है कि वहीं एक मस्जिद में दोनों ने विवाह कर लिया। कहते हैं कि तब इन्दिरा ने अपना नाम बदलकर 'मैमूना बेगम' रख लिया था। फिरोज भी अपनी पढ़ाई कभी पूरी नहीं कर सके।

जब वे दोनों इलाहाबाद लौटे और नेहरू को उनके विवाह की जानकारी हुई, तो वे बहुत नाराज हुए। उन्होंने अपनी बेटी इन्दिरा को गाँधी के पास भेजा, ताकि वे समझाकर उसे लाइन पर ला सकें। परन्तु वह किसी भी तरह फिरोज को छोड़ने को तैयार नहीं हुई। तब गाँधी ने फिरोज को अपना कुलनाम 'गाँधी' रखने की सलाह दे डाली, ताकि वह हिन्दू लगे। एक घोषणापत्र द्वारा फिरोज ने अपना नाम बदल लिया और फिर दोनों का विवाह हिन्दू रीति–रिवाजों के साथ कर दिया गया, हालांकि फिरोज ने कभी अपना धर्म नहीं बदला था। नेहरू का दामाद बन जाने पर उसे कई सुविधायें भी मिल गयीं और वह नेता बन गया।

गाँधी जी ने शायद यह कल्पना भी नहीं की होगी कि इस प्रकार अपने कुलनाम का उपयोग करने की अनुमति देकर वे देश को कितनी हानि पहुँचा रहे हैं। गाँधी जी का सारा जीवन झूठ पर आधारित था, इसलिए अपनी पुस्तक 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' में उन्होंने इस घटना का संकेत भी नहीं किया है। नेहरू के कोई बेटा नहीं था, इसलिए इन्दिरा–फिरोज का परिवार ही उनका परिवार माना गया। नेहरू ने इन्दिरा को अपने उत्तराधिकारी की तरह तैयार किया, हालांकि उसमें इसकी पर्याप्त

योग्यता नहीं थी। इस प्रकार फिरोज खान के परिवार ने गाँधी और नेहरू दोनों के नाम का जमकर लाभ उठाया। भारत की जनता क्योंकि मूर्ख और भावुक है, इसलिए वह इन्दिरा को नेहरू और गाँधी दोनों की बेटी मानती रही।

फिरोज–इन्दिरा और उनके दोनों पुत्रों राजीव तथा संजीव (संजय) ने किस प्रकार देश को लूटा, लोकतंत्र की हत्या की और करोड़ों–अरबों की जायदाद एकत्र की इसकी कहानी सब जानते हैं। यदि गाँधी जी ने उनको अपना कुलनाम न दिया होता, तो शायद ऐसा न होता। इस प्रकार गाँधी जी ही नहीं, उनका नाम भी देश के लिए अभिशाप सिद्ध हुआ।

मैंने गांधी को क्यों मारा – नाथूराम गोडसे

30 जनवरी 1948 को नाथूराम गोड़से ने गांधी जी की गोली मारकर हत्या कर दी थी। लेकिन नाथूराम गोड़से घटना स्थल से फरार नहीं हुए, बल्कि उन्होंने स्वतः आत्मसमर्पण कर दिया। नाथूराम गोड़से समेत 17 अभियुक्तों पर गांधी जी की हत्या का मुकदमा चलाया गया। इस मुकदमे की सुनवाई के समय न्यायमूर्ति खोसला से नाथूराम ने अपना वक्तव्य स्वयं पढ़कर जनता को सुनाने की अनुमति माँगी थी, जिसे न्यायमूर्ति ने स्वीकार कर लिया।

इस बयान को सुनकर अदालत में उपस्थित सभी लोगों की आँखें गीली हो गयी थीं और कई तो रोने लगे थे। न्यायाधीश महोदय ने अपनी टिप्पणी में लिखा था कि ‘यदि उस समय अदालत में उपस्थित लोगों को जूरी बना दिया जाता और उनसे फैसला देने को कहा जाता, तो निस्संदेह वे प्रचण्ड बहुमत से नाथूराम के निर्दोष होने का निर्णय देते।’

परन्तु यह बयान कोर्ट परिसर तक ही सीमित रह गया, क्योंकि कांग्रेसी सरकार ने नाथूराम के इस वक्तव्य पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। नाथूराम का यह अंतिम भाषण 60 साल तक भारत में प्रतिबंधित रहा, लेकिन नाथूराम के छोटे भाई और गांधी जी की हत्या के सह–अभियोगी गोपाल गोड़से ने 60 साल की लम्बी कानूनी लड़ाई के बाद सुप्रीम कोर्ट में विजय प्राप्त की और नाथूराम का वक्तव्य प्रकाशित किया गया।

नाथूराम गोड़से ने गांधी हत्या के पक्ष में एक–दो नहीं पूरे 150 कारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किये थे। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि गाँधी जी के ये अपराध ऐसे थे जिनके लिए उनको किसी भी न्यायालय द्वारा दंडित नहीं कराया जा सकता था, इसलिए वे यह कार्य अपने हाथों से कर रहे हैं। उन्हें अच्छी तरह पता था कि इस हत्या के लिए उनको फाँसी दी जायेगी। वे इसके लिए पूरी तरह तैयार थे और कहीं भी अपील करने से भी उन्होंने स्पष्ट मना कर दिया था। अन्ततः 15 नवम्बर 1949 को अम्बाला जेल में उनको फाँसी दे दी गयी।

नाथूराम गोड़से के वक्तव्य के कुछ मुख्य अंश यहाँ दिये जा रहे हैं–

1. नाथूराम का विचार था कि गांधी जी की अहिंसा हिन्दुओं को कायर बना देगी। कानपुर में गणेश शंकर विद्यार्थी को मुसलमानों ने निर्दयता से मार दिया था।

गांधी जी सभी हिन्दुओं से गणेश शंकर विद्यार्थी की तरह अहिंसा के मार्ग पर चलकर बलिदान करने की बात करते थे। नाथूराम गोड़से को भय था कि गांधी जी की यह अहिंसावाली नीति हिन्दुओं को कमजोर बना देगी और वे अपना अधिकार कभी प्राप्त नहीं कर पायेंगे।

2. 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर के जलियाँवाला बाग गोलीकांड के बाद से पूरे देश में ब्रिटिश हुकुमत के खिलाफ आक्रोश उफान पर था। भारतीय जनता इस नरसंहार के खलनायक जनरल डायर पर अभियोग चलाने की मंशा लेकर गांधी जी के पास गयी, लेकिन गांधी जी ने भारतवासियों के इस आग्रह को समर्थन देने से साफ मना कर दिया।

3. गांधी जी ने खिलाफत आन्दोलन का समर्थन करके भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता का जहर घोल दिया। गांधी जी खुद को मुसलमानों के हितैषी की तरह पेश करते थे। वो केरल के मोपला मुसलमानों द्वारा वहाँ के 15000 हिन्दूओं को मारने और एक लाख से अधिक हिन्दुओं को मुसलमान बनाये जाने की घटना का विरोध तक नहीं कर सके।

4. कांग्रेस के त्रिपुरा अधिवेशन में नेताजी सुभाष चन्द्र बोस को बहुमत से काँग्रेस अध्यक्ष चुन लिया गया, किन्तु गांधी जी अपने प्रिय सीतारामैया का समर्थन कर रहे थे। गांधी जी ने सुभाष चन्द्र बोस से जोर जबरदस्ती करके इस्तीफा देने के लिए मजबूर कर दिया।

5. 23 मार्च 1931 को भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को फांसी दे दी गयी। पूरा देश इन वीर बालकों की फांसी को टालने के लिए गांधी जी से प्रार्थना कर रहा था, लेकिन गांधी जी ने भगत सिंह की हिंसा को अनुचित ठहराते हुए देशवासियों की इस उचित माँग को अस्वीकार कर दिया।

6. गांधी जी ने कश्मीर के हिन्दू राजा हरि सिंह से कहा कि कश्मीर मुस्लिम बहुल क्षेत्र है, अतः वहां का शासक कोई मुसलमान होना चाहिए। अतएव राजा हरिसिंह को शासन छोड़कर काशी जाकर प्रायश्चित करना चाहिए। परन्तु हैदराबाद के निजाम के शासन का गांधी जी ने समर्थन किया था, जबकि हैदराबाद हिन्दू बहुल क्षेत्र था। गांधी जी की नीतियाँ धर्म के साथ बदलती रहती थीं। उनकी मृत्यु के पश्चात सरदार पटेल ने सशक्त बलों के सहयोग से हैदराबाद को भारत में मिलाने का कार्य किया। गांधी जी के रहते ऐसा करना संभव नहीं होता।

7. पाकिस्तान में हो रहे भीषण रक्तपात से किसी तरह से अपनी जान बचाकर भारत आने वाले विस्थापित हिन्दुओं ने दिल्ली की खाली मस्जिदों में जब अस्थाई शरण ली, तो मुसलमानों ने मस्जिद में रहने वाले हिन्दुओं का विरोध किया, जिसके आगे गांधी जी नतमस्तक हो गये और गांधी जी ने उन विस्थापित हिन्दुओं को जिनमें वृद्ध, स्त्रियाँ व बालक अधिक थे मस्जिदों से खदेड़कर बाहर ठिठुरते शीत में रात बिताने पर मजबूर कर दिया।

8. गांधी जी ने दिल्ली स्थित मंदिर में अपनी प्रार्थना सभा के दौरान नमाज पढ़ी, जिसका मंदिर के पुजारी से लेकर तमाम हिन्दुओं ने विरोध किया, लेकिन गांधी जी ने इस विरोध को उपेक्षित कर दिया। परन्तु गांधी जी एक बार भी किसी मस्जिद में जाकर गीता का पाठ नहीं कर सके।

9. लाहौर कांग्रेस में वल्लभभाई पटेल को बहुमत से विजय प्राप्त हुई, किन्तु गाँधी जी की जिद के कारण यह पद जवाहरलाल नेहरु को दिया गया। गांधी जी अपनी मांग को मनवाने के लिए अनशन, धरना, रूठना, किसी से बात न करने जैसी युक्तियों को अपनाकर अपना काम निकलवाने में माहिर थे। इसके लिए वो नीति–अनीति का लेशमात्र भी विचार नहीं करते थे।

10. 14 जून 1947 को दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में भारत विभाजन का प्रस्ताव अस्वीकृत होने वाला था, लेकिन गांधी जी ने वहाँ पहुँचकर प्रस्ताव का समर्थन करवाया। यह भी तब जबकि गांधी जी ने स्वयं ही यह कहा था कि देश का विभाजन उनकी लाश पर होगा। न सिर्फ देश का विभाजन हुआ बल्कि लाखों निर्दोष लोगों का कत्लेआम भी हुआ, लेकिन गांधी जी ने कुछ नहीं किया।

11. धर्म–निरपेक्षता के नाम पर मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति के जन्मदाता गाँधी जी ही थे। जब मुसलमानों ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाये जाने का विरोध किया, तो गांधी जी ने सहर्ष ही इसे स्वीकार कर लिया और हिंदी की जगह हिन्दुस्तानी (हिंदी–उर्दू की खिचड़ी) को बढ़ावा देने लगे। बादशाह राम और बेगम सीता जैसे शब्दों का चलन शुरू हुआ।

12. कुछ एक मुसलमानों द्वारा वंदे मातरम् गाने का विरोध करने पर गांधी जी झुक गये और इस पावन गीत को भारत का राष्ट्र गान नहीं बनने दिया।

13. गांधी जी ने अनेक अवसरों पर शिवाजी, महाराणा प्रताप व गुरू गोविन्द सिंह को पथभ्रष्ट देशभक्त कहा। वहीं दूसरी ओर गांधी जी मोहम्मद अली जिन्ना को कायदे–आजम कहकर पुकारते थे।

14. कांग्रेस ने 1931 में स्वतंत्र भारत के राष्ट्र ध्वज बनाने के लिए एक समिति का गठन किया था। इस समिति ने सर्वसम्मति से चरखा अंकित भगवा वस्त्र को भारत के राष्ट्र ध्वज की डिजाइन को मान्यता दी, किन्तु गांधी जी की जिद के कारण उसे बदलकर तिरंगा कर दिया गया।

15. जब सरदार वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में सोमनाथ मन्दिर का सरकारी व्यय पर पुनर्निर्माण का प्रस्ताव पारित किया गया, तब गांधी जी, जो कि मंत्रिमण्डल के सदस्य भी नहीं थे, ने सोमनाथ मन्दिर पर सरकारी व्यय के प्रस्ताव को निरस्त करवाया और 13 जनवरी 1948 को आमरण अनशन के माध्यम से सरकार पर दिल्ली की मस्जिदों का सरकारी खर्चे से पुनर्निर्माण कराने के लिए दबाव डाला।

16. भारत को स्वतंत्रता के बाद पाकिस्तान को एक समझौते के तहत 75 करोड़ रुपये देने थे। भारत ने 20 करोड़ रुपये दे भी दिए थे, लेकिन इसी बीच 22 अक्टूबर 1947 को पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने आक्रमण से क्षुब्ध होकर 55 करोड़ की राशि न देने का निर्णय लिया, जिसका गांधी जी ने विरोध किया और आमरण अनशन शुरू कर दिया जिसके परिणामस्वरूप 55 करोड़ की राशि भारत ने पाकिस्तान को दे दी।

इस प्रकार नाथूराम गोडसे ने अपने अन्तिम वक्तव्य में गाँधी जी को मारने के अनेक कारण बताये थे। नाथूराम गोडसे की दृष्टि में गांधी जी भारत के नहीं, अपितु पाकिस्तान के राष्ट्रपिता थे, जो हर कदम पर पाकिस्तान के पक्ष में खड़े रहे, फिर चाहे पाकिस्तान की मांग जायज हो या नाजायज।

उपसंहार

इस पुस्तिका में दिये गये अनेक उदाहरणों से स्पष्ट है कि जिस व्यक्ति को कांग्रेस पार्टी और सरकारों ने 'महात्मा' और 'राष्ट्रपिता' के रूप में महिमामंडित किया था, वे गाँधी जी वास्तव में बहुत ही मूर्ख और क्षुद्र व्यक्ति थे। देश और विदेश में इतना सम्मान पाकर भी वे हमेशा देश और हिन्दू धर्म के विरोध में कार्य करते रहे। जिस मुस्लिम तुष्टीकरण ने देश के टुकड़े कराये और जो लाखों लोगों की हत्या और माता–बहिनों के मानभंग का कारण बना, उसके बीज गाँधी जी ने ही बोये थे।

यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि गाँधी जी के जीवन के इन पक्षों पर हमारी पाठ्यपुस्तकों में कोई प्रकाश नहीं डाला जाता। इसके विपरीत उनके इन देशविरोधी कार्यों पर पर्दा डालकर केवल दूसरे कार्यों को ही प्रचारित किया जाता है। लेकिन जैसे–जैसे उनके बारे में अधिक जानकारी मिलती है, वैसे–वैसे उनके कार्यों से घृणा होती जाती है। इन सबको जानना इसलिए आवश्यक है कि फिर कभी इस देश में किसी गाँधी का जन्म न हो, जो देश का भावनात्मक भयादोहन करके भयंकर हानि पहुँचा सके।

वन्दे मातरम्!